उस धूसर सन्नाटे में

धीरेंद्र अस्थाना

उस धूसर सन्नाटे में

फोन करनेवाले ने जब आर्द्र स्वर में सूचना दी कि ब्रजेंद्र बहादुर सिंह थोड़ी देर पहले गुजर गए तो मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।

उनका मरना तो उसी रात तय हो गया था, जब आसमान पर मटमैले बादल छाए हुए थे और सड़कों पर धूल–भरी आँधी मचल रही थी। अखबारों में मौसम की

https://www.hindiadda.com/us-dhoosar-sannate-mein/

भविष्यवाणी सुबह ही की जा चुकी थी। अफवाह थी कि लोकल ट्रेनें बंद होनेवाली हैं। गोराई की खाड़ी के आसपास मूसलाधार बारिश के भी समाचार थे। कोलाबा हालाँकि अभी शांत था लेकिन आजाद मैदान धूल के बवंडरों के बीच सूखे पत्ते सा खड़खड़ा रहा था।

यह रात के ग्यारह बजे का समय था। क्लब में उदासीनता और थकान एक साथ तारी हो चुकी थीं। लास्ट ड्रिंक की घंटी साढ़े दस बजे बज गई थी - नियमानुसार, हालाँकि आज उसकी जरूरत नहीं थी। क्लब की चहल-पहल के सामने, ऐन उसकी छाती पर, मौसम उस रात शायद पहली बार प्रेत-बाधा सा बन कर अड़ गया था। इसलिए क्लब शुरू से ही वीरान और बेरौनक नजर आ रहा था।

उस दिन मुंबई के दफ्तर शाम से पहले ही सूने हो गए थे। हर कोई लोकल के बंद हो जाने से पहले ही अपने घर के भीतर पहुँच कर सुरक्षित हो जाने की हड़बड़ी में था। भारी बारिश और लोकल जाम - यह मुंबईवासियों की आदिम दहशत का सर्वाधिक असुरक्षित और भयाक्रांत कोना था, जिसमें एक पल भी ठहरना चाकुओं के बीच उतर जाने जैसा था।

और ऐसे मौसम में भी ब्रजेंद्र बहादुर सिंह शाम सात बजे ही क्लब चले गए थे। क्लब उनके जीवन में धमनियों की तरह था - सतत जाग्रत, सतत सक्रिय। क्लब के वेटर बताते थे कि ब्रजेंद्र बहादुर सिंह पश्चिम रेलवे के ट्रैक पर बने मुंबई के सबसे अंतिम स्टेशन दहिसर में बने अपने दो कमरोंवाले फ्लैट से निकल कर इतवार की शाम को भी आजाद मैदान के पास बने इस क्लब में चले आते थे। सो, उस शाम विपरीत मौसम के बावजूद, ब्रजेंद्र बहादुर सिंह क्लब में जिद की तरह मौजूद थे।

करीब ग्यारह बजे उन्होंने खिड़की का पर्दा सरका कर आजाद मैदान के आसमान की तरफ ताका था। नहीं, उस ताकने में कोई दुश्चिंता नहीं छिपी थी। वह ताकना लगभग उसी तरह का था जैसे कोई काम न होने पर हम अपनी उँगलियाँ चटकाने लगते हैं लेकिन सुखी इस तरह हो जाते हैं जैसे बहुत देर से छूटा हुआ कोई काम निपटा लिया गया हो।

आसमान पर एक धूसर किस्म का सन्नाटा पसरा हुआ था और आजाद मैदान निपट खाली था - वर्षों से उजाड़ पड़ी किसी हवेली के अराजक और रहस्यमय कंपाउंड सा। विषाद जैसा कुछ ब्रजेंद्र बहादुर सिंह की आँखों में उतरा और उन्होंने हाथ में पकड़े गिलास से रम का एक छोटा घूँट भरा फिर वह उसी गिलास में एक लार्ज पेग और डलवा कर टीवी के सामने आ बैठ गए - रात ग्यारह के अंतिम समाचार सुनने।

ब्रजेंद्र बहादुर सिंह क्लब के नियमों से ऊपर थे। उन्हें साढ़े दस बजे के बाद भी शराब मिल जाती थी, चुपके–चुपके, फिर आज तो क्लब वैसे भी सिर्फ उन्हीं से गुलजार था। छह वेटर और ग्राहक दो, एक ब्रजेंद्र बहादुर सिंह और दूसरा मैं।

मैं दफ्तर में उनका सहयोगी था और उनके फ्लैट से एक स्टेशन पहले बोरीवली में किराए के एक कमरे में रहता था। उतरते वह भी बोरीवली में ही थे और वहाँ से ऑटो पकड़ कर अपने फ्लैट तक चले जाते थे। मैं उनका दोस्त तो था ही, एक सुविधा भी था। सुबह ग्यारह बजे से रात ग्यारह, बारह और कभी–कभी एक बजे तक उनके संग-साथ और निर्भरता की सुविधा। हाँ, निर्भरता भी क्योंकि कभी-कभी जब वह बांद्रा आने तक ही सो जाते थे तो मैं ही उन्हें बोरीवली में जगा कर दहिसर के ऑटो में बिठाया करता था। मेरे परिचितों में जहाँ बाकी लोग नशा चढ़ने पर गाली-गलौज करने लगते थे या वेटरों से उलझ पड़ते थे वहीं ब्रजेंद्र बहादुर सिंह चुपचाप सो जाते थे। कई बार वह क्लब में ही सो जाते थे और जगाने पर 'लास्ट फॉर द रोड' बोल कर एक पेग और मँगा कर पी लेते थे। कई बार तो मैंने यह भी पाया था कि अगर वह लास्ट पेग माँगना भूल कर लड़खड़ाते-से चल पड़ते थे, तो क्लब के बाहरी गेट की सीढ़ियों पर कोई वेटर भूली हुई मुहब्बत-सा प्रकट हो जाता था - हाथ में उनका लास्ट पेग लिए।

ऐसे क्षणों में ब्रजेंद्र सिंह भावुक हो जाते थे, बोलते वह बहुत कम थे, धन्यवाद भी नहीं देते थे। सिर्फ कृतज्ञ हो उठते थे। उनके प्रति वेटरों के इस लगाव को देख बहुत से लोग खफा रहते थे। लेकिन यह बहुत कम लोगों को पता था कि क्लब के हर वेटर के घर में उनके द्वारा दिया गया कोई न कोई उपहार अवश्य मौजूद था - बॉल पेन से ले कर कर कमीज तक और पेंट से ले कर घड़ी तक।

नहीं, ब्रजेंद्र बहादुर सिंह रईस नहीं थे। जिस कंपनी में वह परचेज ऑफीसर थे, वहाँ उपहारों का आना मामूली बात थी। यही उपहार वह अपने शुभचिंतकों को बाँट देते थे। फिर वह शुभचिंतक चाहे क्लब का वेटर हो या उस बिल्डिंग का दरबान, जिसमें उनका छोटा सा, दो कमरोंवाला फ्लैट था। फिलीपींस में असेंबल हुई एक कीमती रिस्टवाच उस वक्त मेरी कलाई में भी दमक रही थी जब ब्रजेंद्र बहादुर सिंह आजाद मैदान के आसमान में टँगे उस सन्नाटे से टकरा कर टीवी के सामने आ बैठ गए थे - अंतिम समाचार सुनने।

कुछ अरसा पहले एक गिफ्ट मे कर उन्हें यह घड़ी दे गया था। जिस क्षण वह खूबसूरत रैपर को उतार कर उस घड़ी को उलट-पुलट रहे थे, ठीक उसी क्षण मेरी नजर उनकी

तरफ चली गई थी। मुझसे आँख मिलते ही वह तपाक से बोले थे - 'तुम ले लो। मेरे पास तो है।'

यह दया नहीं थी। यह उनकी आदत थी। उनका कहना था कि ऐसा करके वह अपने बचपन के बुरे दिनों से बदला लेते हैं। सिर्फ उपहार में प्राप्त वस्तुओं के माध्यम से ही नहीं, अपनी गाढ़ी कमाई से अर्जित धन को भी वह इसी तरह नष्ट करते थे। एक सीमित, बँधी तनख्वाह के बावजूद टैक्सी और ऑटो में चलने के पीछे भी उनका यही तर्क काम कर रहा होता था।

सुनते हैं कि अपने बचपन में ब्रजेंद्र बहादुर सिंह अपने घर से अपने स्कूल की सात किलोमीटर की दूरी पैदल नापा करते थे क्योंकि तब उनके पास बस का किराया दो आना नहीं होता था।

टीवी के सामने बैठे ब्रजेंद्र बहादुर सिंह अपना लास्ट पेग ले रहे थे और मैं टॉयलेट गया हुआ था। लौटा तो क्लब का मरघटी सन्नाटा एक अविश्वसनीय शोरगुल और अचरज के बीच खड़ा काँप रहा था, पता चला ब्रजेंद्र बहादुर सिंह ने अपने सबसे चहेते वेटर हनीफ को चाँटा मार दिया था।

जिंदगी के निचले पायदानों पर लटके-अटके हुए लोग, क्रांति की भाषा में उनके पास खोने के लिए कुछ नहीं था। अगर प्रतिक्रियास्वरूप सारे वेटर एक हो जाएँ और उस सुनसान रात में एक चाँटा भी ब्रजेंद्र बहादुर सिंह को जड़ दें तो उसकी आवाज पूरे शहर में कोलाहल की तरह गूँज सकती थी और मीमो बन कर ब्रजेंद्र बहादुर सिंह के बेदाग कैरियर में पैबंद की तरह चिपक सकती थी।

ऐसा कैसे संभव है? मैं पूरी तरह बौराया हुआ था और अविश्वसनीय नजरों से उन्हें घूर रहा था। अब तक अपना चेहरा उन्होंने अपने दोनों हाथों में छुपा लिया था।

क्या हुआ? मैंने उन्हें छुआ। यह मेरा एक सहमा हुआ-सा प्रयत्न था। लेकिन वह उलझी हुई गाँठ की तरह खुल गए।

उस निर्जन और तूफानी रात के नशीले एकांत में मैंने देखा अपने जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार। वह चमत्कार था या रहस्य। रहस्य था या दर्द। वह जो भी था इतना निष्पाप और सघन था कि मेरे रोंगटे खड़े हो गए।

ब्रजेंद्र बहादुर सिंह के अधेड़ और अनुभवी चेहरे पर

https://www.hindiadda.com/us-dhoosar-sannate-mein/